P: ISSN NO.: 2394-0344　　RNI No.UPBIL/2016/67980　　VOL-3* ISSUE-2* May- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817　　*Remarking An Analisation*

समकालीन पाश्चात्य दर्शन की शोध पद्धतियाँ

पिताम्बर दास
असिस्टेंट प्रोफेसर,
दर्शनशास्त्र विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

सारांश

पाश्चात्य जगत् में समकालीन पाश्चात्य दर्शन आधुनिक चिन्तन की एक ऐसी दार्शनिक प्रवृत्ति है, जो विज्ञान, तकनीक, औद्योगिकीकरण से प्रभावित है और इसी कारण से यह दार्शनिक प्रवृत्ति अनुभव, तर्क एवं वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर प्राचीन दर्शन की मीमांसा करके अपने नवीन विचारों को प्रस्तुत करती है। 21वीं सदीं में यह दर्शन अन्तर्विषयिक परिचर्चा एवं संगोष्ठियों के माध्यम से अस्तित्व में आया। जिसने रूढ़ी एवं अन्धविश्वास पर आधारित दार्शनिक प्रत्ययों एवं सिद्धान्तों की समीक्षा करने के बाद तत्वमीमांसीय सिद्धान्तों का निरसन एवं उनको निरर्थक घोषित किया। पाश्चात्य जगत् में इस प्रकार की चिन्तन की प्रवृत्ति को प्राचीन ग्रीक दार्शनिक सुकरात ने अपनाया था। समकालीन युग में दार्शनिको ने इसी प्रकार की दार्शनिक प्रवृत्ति को आगे बढ़ाते हुए प्रत्यक्ष अनुभव, तर्क, प्रकृति, व्यवहार ,विकास, उत्पत्ति एवं मानव अस्तित्व व व्यक्तित्त्व के आधार पर नवीन दार्शनिक विचाधाराओं की स्थापना की, जिनका जनमानस ने न केवल गर्मजोशी से स्वागत किया, अपितु अपने जीवन एवं चिन्तन शैली में इनको बड़ी तेजी से व्यावहारिक रूप भी दिया। ऐसी दार्शनिक प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप ही आज का मानव पाश्चात्य एवं पूर्वी दोंनो देशों में अनुभव, तर्क एवं वैज्ञानिक कसौटी पर प्रमाणिक होने के बाद ही किसी विचार अथवा सिद्धान्त को स्वीकार करता है। मानव जगत् में यह जागरूकता समकालीन दर्शन की ही देन है।

मुख्य शब्द : दर्शन, समकालीन, पाश्चात्य, विकासवाद, प्रकृतिवाद, अनुभववाद, तार्किकवाद, अस्तित्ववाद, व्यवहारवाद, तत्वमीमांसा, निरसन, विज्ञान।

प्रस्तावना

21वीं सदी में एक प्रकार से ग्रीक दार्शनिक सुकरात की दार्शनिक विचाराधारा का पुनर्जागरण हुआ, क्योंकि सुकरात अपनी चर्चाओं में अनुभव एवं तर्क की पद्धति का प्रयोग करते थे। भारतीय दर्शन में भी तथागत बुद्ध ने इसी प्रकार की पद्धति का प्रयोग अपनी देशनाओं में किया है।

शोध पत्र का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य यह बताना है कि किस प्रकार से पाश्चात्य जगत् में अनुभव, तर्क एवं वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर 21वीं सदीं में एक नवीन चिन्तन की प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ और इस चिन्तन ने न केवल जीवन दर्शन को जन्म दिया अपितु जनमानस की जीवन शैली में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन का आरम्भ किया। प्रस्तुत शोध पत्र में इंगित विचारो ने पाश्चात्य जगत् के साथ–साथ पूर्वी जगत् के चिन्तन में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। समकालीन मानव अब प्रत्येक विचार एवं सिद्धान्त को अनुभव, तर्क एवं वैज्ञानिक कसौटी पर प्रमाणिक होने के बाद ही विश्वास करता है। इस आनुभविक विश्वास की परम्परा को बताना ही इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

साहित्यावलोकन

उपरोक्त विषय पर डॉ0 पिताम्बरदास द्वारा लिखित पुस्तक ''दर्शनशास्त्र की शोध प्रविधियॉ'' में पृष्ठ संख्या 65 से 87 पर एक अध्याय लिखा हुआ है, जिसको मैने इस शोध पत्र का मुख्य आधार बनाया है, जो वर्ष 2017 में शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, उ0 प्र0 द्वारा प्रकाशित है। कुछ सामग्री विकासवादी, प्रत्ययवादी एवं यान्त्रिकवादी पद्धति से सम्बंधित जार्ज टामसव्हाइट पैट्रिक की पुस्तक ''दर्शनशास्त्र का परिचय'' (हिन्दी अनुवाद) के पृष्ठ संख्या 120, 133, 211, 200 पर लिखित है। यह पुस्तक वर्ष 1990 में हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित है। अस्तित्ववादी पद्धति एवं अर्थक्रियावादी व संवृतिवादी पद्धति से सम्बन्धित सामग्री जगदीश सहाय श्रीवास्तव की पुस्तक ''पाश्चात्य दर्शन की दार्शनिक प्रवृत्तियाँ'' के पृष्ठ संख्या 441 से 484, 273 से 294, 431 से 440 पर

भी प्रकाशित है, यह पुस्तक वर्ष 2000 में अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित है। तार्किक भाववाद एवं विश्लेषणात्मक पद्धति से सम्बन्धित कुछ सामग्री बसन्त कुमार लाल की पुस्तक ''समकालीन पाश्चात्य दर्शन'' के पृष्ठ संख्या 271 से 274 तथा 397 से 446 पर भी प्रकाशित है। उपरोक्त शीर्षक पर अलग से कोई शोध पत्र हिन्दी में कहीं नहीं प्रतीत होता है। अंग्रेजी भाषा में इस शीर्षक से कोई शोध पत्र उपलब्ध नहीं है। अतः यह शोध पत्र इस शीर्षक पर एक नवीन दृष्टि है।

21वीं सदी वैज्ञानिक युग की सदी है, जिसमें रूढ़ी एवं अन्धविश्वास के तत्त्वमीमांसीय तत्त्वों को वैज्ञानिक पद्धति की कसौटियों पर रखकर अनुसंधान किया गया तो समकालीन दार्शनिको ने उनको निरर्थक पाया और दर्शन के क्षेत्र से उनका निरसन करना प्रारम्भ कर दिया। जी0 ई0 मूर, ए0जे0 ऐयर जैसे दार्शनिको के दर्शन में तत्त्वमीमांसीय निरसन के सिद्धान्त प्रसिद्ध है कि वे किस प्रकार तत्त्वमीमांसा की समीक्षा अनुभव, तर्क एवं वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर करते है और उनको निरर्थक पाकर उनका निरसन कर देते है, परन्तु मानववादी एवं अस्तित्ववादी दर्शन तत्त्वमीमांसीय तत्त्वों को मानव में ही खोजने का प्रयास करते हुए दिखाई देते हैं। समकालीन पाश्चात्य जगत् में ऐसे ही प्रमुख विचारों को आधार बनाकर समकालीन दार्शनिको ने नवीन एवं प्रासांगिक पद्धतियों की स्थापना की जिनकी खोज प्रायः दार्शनिको के विभिन्न समूहो द्वारा की गई, जिनकी विवेचना निम्नवत हैः–

विकासवादी पद्धति (Evolutive Method)

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में कुछ प्रमुख वैज्ञानिको ने विकासवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। जिनमें केवल दो वैज्ञानिकों के विकास सिद्धान्त में विकासवादी पद्धति पूर्ण रूप से स्पस्ष्ट हो जाती है। इन वैज्ञानिको में लामार्क (1748–1829) और चार्ल्स डार्विन (1809–1882) मुख्य विकासवादी दार्शनिक है। इन वैज्ञानिको ने अपने विकासवादी पद्धतियों में ऐसे–ऐसे नवीन सिद्धान्तो ंकी विवेचना की जिनका प्रभाव तत्कालीन दार्शनिको के साथ–साथ आम जनमानस पर भी बहुत अधिक पड़ा। लामार्क ने अपनी पुस्तक **'जूलाजिकल फिलासफी'** में प्राणियों के विकास क्रम के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि,' सभी प्राणियों का विकास क्रम कुछ सरल पूर्वजों से हुआ है। जैसे, मानव की उत्पत्ति सरल प्राणियों से हुई है अर्थात् प्राणियों का विकास क्रम कुछ नियमों के अनुसार हुआ है। इनमें प्रथम नियम के अनुसार–प्राणियों में कुछ प्रबल इच्छाएं होती हैं, जिनकी पूर्ति के लिए उनमें नए अंगों की उत्पत्ति होती है। दूसरे नियम के अनुसार– नई इच्छाओं की तुष्टि के लिए प्राणी नए तरह के कार्य करते है। इस तरह नई इच्छाओं की उत्पत्ति के कारण प्राणियों में नई आदतें पड़ जाती हैं। विकास क्रम का तीसरा नियम यह है कि उपयोग–नियम अथवा अनुपयोग–नियम के प्रभाव से प्राणियों के अंगों में परिवर्तन होता है। प्राणियों के कुछ अंगों के नियत व्यवहार से ये दृढ़ बनते हैं,किन्तु इनको यदि व्यवहार में न लाया जाये तो ये दुर्बल हो जाते हैं। विकास के चौथे नियम के अनुसार, प्राणियों में जिन नए परिवर्तनों की उत्पत्ति होती है, उन्हें वे आनुवंशिकता के माध्यम से संततियों में संचारित करते हैं। जैसे उदाहरणार्थ, सदियों पहले जिराफों की लम्बी गर्दन नहीं होती थी, परन्तु वे पेड़ों से पत्ते खाने के लिए गर्दन को विस्तारित किया करते थे, जिसके कारण उनकी गर्दन थोड़ी–सी और लम्बी हो जाती थी। उनकी गर्दन का लम्बापन आनुवंशिकता के माध्यम से उनकी सन्तति में संचरित होता रहा। इस प्रकार अनेक वर्षों के बाद जिराफों की गर्दन लम्बी हो गई। प्राणियों का यह विकास क्रम क्रमिक होता हैं।

विकासवादी पद्धति में लामार्क के विकास क्रम के सिद्धान्त के रचनाकाल को देखते हुए विज्ञान के क्षेत्र में उनकी यह देन प्रशंसनीय है। वर्तमान काल के वैज्ञानिक लामार्क के सिद्धान्त के कुछ प्रत्ययों को ही स्वीकार करते है। जैसे जीवित सत्ताओं के अंग मजबूत अथवा दुर्बल, उपयोग–नियम तथा अनुउपयोग–नियम के कारण होते है। लामार्क का यह कहना भी सही है कि जटिल प्राणियों की उत्पत्ति सरल प्रकार के प्राणियों से हुई है। कई बातों में लामार्क के सिद्धान्त के कुछ पहलू ऐसे हैं, जिनको वर्तमान काल के वैज्ञानिक अस्वीकार करते है। जैसे प्राणियों का विकास क्रम उनमें प्रबल इच्छा के कारण हुआ है। वे इस बात को नहीं मानते। इन दोषों के होने पर भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि लामार्क का सिद्धान्त उनके युग को ध्यान में रखते हुए सराहनीय है।

चार्ल्स डार्विन का विकास क्रम का सिद्धान्त वैज्ञानिक अनुसंधानों पर आधारित हैं। उन्होनें अपने जैविक विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन अपनी सुप्रसिद्ध रचनाओं **ऑन दी ऑरीजन ऑफ स्पिसिज (1859) एवं दी डिसेन्ट ऑफ मैन (1871)** में किया। उन्होंने वैज्ञानिक शोधो से इस बात को सिद्ध किया कि वर्तमान काल के प्राणियों की उत्पत्ति अन्य प्रकार के प्राणियों से हुई है। निम्न श्रेणीयों के प्राणियों की उत्पत्ति के क्रम में प्रसूतियाँ अधिक संख्या में होती है और इन प्राणियों की प्रसूतियाँ सम्पूर्ण रूप से अपने माता–पिता के अनुरूप ही नहीं होती। जिसके कारण इन प्राणियों की जातियों में विविधता देखने को मिलती है। एक ही जाति में कुछ प्राणी शक्तिशाली होते है तो कुछ तीक्ष्ण बुद्धि और अन्य साहसी। इन विविध प्रकार के प्राणियों में से केवल वे ही अपना अस्तित्व बनाए रख सकते है, जो अपने–आप को परिवेश के अनुकूल बना सकें। जो प्राणी वातावरण के साथ समायोजन करने में समर्थ होते हैं, वे आनुवंशिकता के माध्यम से अपनी विशेषताओं को अपनी प्रसूतियों में संचारित करते हैं। इस तरह से अपने को वातावरण के अनुरूप ढालने से प्राणियों का विकास होता है। ऐसा भी देखा जाता है कि वे प्राणी जो अपने वातावरण के साथ समझौता करने में समर्थ होते है, वे समायोजन की प्रक्रिया में और भी अधिक कुशलता का प्रदर्शन कर पाते है। प्राणियों के वातावरण के साथ समायोजन की प्रक्रिया को डार्विन 'प्राकृतिक चुनाव' कहते है। चार्ल्स डार्विन प्राणियों के वातावरण के साथ समायोजन की प्रक्रिया को **'योग्यतम की अतिजीविता' (Survival of the Fittest)** कहते है। परन्तु समायोजन की

इस प्रक्रिया में जो प्राणी वातावरण के साथ समझौता करने में असमर्थ होते है, वे अपने अस्तित्व को बचाए रखने में सफल नहीं होते। डार्विन के अनुसार प्राणियों के विकास में किसी प्रकार का अलौकिक उद्देश्य नहीं है क्योंकि प्राणियों का प्राकृतिक चुनाव उपयोगितावादी नियमों द्वारा निर्धारित नहीं होता, परन्तु फिर भी सांयोगिक नियम के कारण कुछ प्राणी वातावरण के साथ समझौता करने में समर्थ होते हैं और कुछ असमर्थ और यह केवल संयोग की बात है कि कुछ प्राणियों में विशेष प्रकार के अंग एवं इन्द्रियाँ होती है, जिनकी सहायता से वे वातावरण के साथ समझौता करने में समर्थ होते हैं। जैविक विकास की प्रक्रिया में आकस्मिकता के नियम का महत्त्व होने के कारण प्राणियों की जातियों में विविधता धीरे–धीरे दिखाई पड़ती है। जैविक विकास के क्रम में परिवर्तन अविच्छिन्न एवं क्रमिक तरीके से होता है। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी में डार्विन का प्रभाव तत्कालीन विद्वानों पर अधिक रहा। उनके विकास के सिद्धान्त में ऐसे अनेक तथ्य है, जिनको अभी तक यथार्थ माना जाता है। डार्विन के वैज्ञानिक होने के कारण उनमें कोई पूर्वाग्रह नहीं था। डार्विन का विकास का सिद्धान्त वस्तुनिष्ठ है और यह वैज्ञानिक अनुसंधानों पर आधारित है। यद्यपि उनका सिद्धान्त ईसाई धर्म के कुछ मूल सिद्धान्तों से भिन्न था, फिर भी उस समय के प्रमुख विद्वानों ने उनके सिद्धान्तों में नवीनता के कारण उनके विकासवादी सिद्धान्त को महत्व दिया।

इस प्रकार लामार्क एवं डार्विन ने जिस विकासवादी सिद्धान्त की स्थापना की उसका बड़ा भारी प्रभाव तत्कालीन विद्वानों पर पड़ा क्योंकि इससे पहले विद्वान् तत्वमीमांसा एवं धार्मिक विचारों द्वारा गम्भीर रूप से प्रभावित होते थे। जिस समय विज्ञान की प्रगति हुई उस समय धर्म एवं तत्त्व मीमांसा से सम्बन्धित अनेक विचार छिन्न भिन्न होकर टूटने लगे। पहले लोगों का ऐसा धार्मिक विश्वास था कि स्वयं परमेश्वर ने समग्र मानव–जाति का सृजन किया है, किन्तु इस मत का कोई प्रमाण नहीं मिलता। चार्ल्स डार्विन ने कुछ आनुभविक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया था कि मानव–जाति की उत्पत्ति मानव–कल्प वानरों से हुई है और सभी प्राणी जैविक विकास क्रम में एक–दूसरे से अभिन्न है। विकास क्रम का यह सिद्धान्त वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। यही कारण है कि अनेक विद्वानों ने विकास क्रम के मूल निष्कर्षों को स्वीकार किया एवं अपने–अपने अनुसंधानों में इनका प्रयोग किया और उनमें से अनेक विद्वानों को अपने अनुसंधानों के क्षेत्रों में सफलता भी मिली। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि विकास क्रम का यह सिद्धान्त सर्वव्यापी सिद्धान्त है। विश्व के प्रत्येक पहलू में निरन्तर विकास हो रहा है और विकास की प्रत्येक अवस्था में नईं सत्ताओं की उत्पत्ति होती है। यही कारण है कि मानव–ज्ञान में भी सदैव परिवर्तन होता रहता है। समग्र विश्व में निरन्तर विकास क्रम एवं परिवर्तन हो रहा है और साथ ही साथ निरन्तर वैज्ञानिक अनुसंधान के कारण ज्ञान के क्षेत्र में भी निरन्तर प्रगति हो रही है।

प्रत्ययवादी पद्धति(Idealistic Method)

प्रत्ययवादी दार्शनिक (सुकरात, प्लेटो, हेगेल) परम तत्त्व की व्याख्या आध्यात्मिक दृष्टिकोण से करते हैं और वे परम तत्त्व को मूल रूप में चेतन स्वरूप कहते हैं। इनका मानना है कि चेतना प्रकृति के प्रत्येक पहलू में व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप से विद्यमान है। जिस समय ज्ञाता प्रकृति अथवा परम तत्व को जानने का प्रयत्न करता है, उसी समय इस तथ्य को स्वीकार कर लिया जाता है कि चेतना के माध्यम से ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्ययवादीयों का कहना है कि संज्ञान क्रिया के प्रारम्भ से ही चेतना विद्यमान है। अतः यह स्पष्ट है कि ज्ञान–मीमांसा के दृष्टिकोण से भी मन अथवा चेतना के अस्तित्व को स्वीकार करना अत्यन्त आवश्यक होता है। व्यक्ति मूल्यों का परिबोध चेतना की सहायता से ही कर सकता है और इसके अतिरिक्त सृजनात्मक व्यक्ति चेतना एवं रचनात्मक कल्पना की सहायता से ही नवीन मूल्यों की रचना करता है। मूल्यों को मानव–समाज का सांस्कृतिक आधार माना जाता है। इन मूल्यों का परिबोध चेतना द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार प्रत्ययवाद यह स्वीकार करता है कि चेतना मानव–समाज एवं संस्कृति का आधार है। अतः प्रत्ययवादी दर्शन न केवल एक प्रकार का दार्शनिक सिद्धान्त है, अपितु यह प्रत्ययवादी पद्धति जीवन–निर्वाह का एक महत्त्वपूर्ण मार्ग भी है।

समकालीन दार्शनिकों ने इस प्रत्ययवादी पद्धति की कड़ी आलोचना की है और इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इन आलोचनाओं में कुछ यथार्थता है। इन आलोचनाओं को ध्यान में रखते हुए आधुनिक प्रत्ययवादी दार्शनिक अपनी विचार–पद्धति में परिवर्तन लाने में बाध्य हुए हैं। प्रत्ययवादी पद्धति में कुछ ऐसे प्रत्ययों पर प्रकाश डाला गया है, जिसका दार्शनिक दृष्टिकोण से बहुत महत्त्व है। जैसे :–

1. चेतना समग्र विश्व का आधार है। यही कारण है कि मानव–व्यक्तित्व एवं प्रकृति की आधारभूत सत्ता में एक ही चेतना के कारण समरूपता दिखाई पड़ती है। प्रकृति के विभिन्न पहलुओं में चेतना के कुछ स्पष्ट लक्षण दिखाई देते है और मानव–सभ्यता के विकास के माध्यम से चेतना का स्पष्टिकरण धीरे–धीरे होता है।
2. प्रत्ययवाद के अनुसार प्रत्येक प्रकार का ज्ञान आत्मनिष्ठ होता है। प्रकृति के विभिन्न पहलुओं का अर्थ–निर्णय आत्मनिष्ठ अनुभव की सहायता से ही किया जाता है। यह सम्भव हो सकता है कि मानव व्यक्तित्व के आत्मनिष्ठ अनुभव एवं विश्व के आधारभूत स्वरूप में समरूपता हो जिसके कारण ज्ञाता एवं ज्ञात में समांजस्य दिखाई पड़ता है।
3. प्रत्ययवाद के अनुसार मानव–व्यक्तित्व में स्वतंत्रता उसके उद्देश्यपरक सिद्धान्त की ही अभिव्यक्ति प्रतीत होती है। प्रकृति के विभिन्न पहलुओं में स्वतःस्फूर्ति विद्यमान है। अतः प्रकृति की प्रक्रियाओं में स्वतःस्फूर्ति तथा मानव–व्यक्तित्व में स्वतंत्रता उद्देश्यपरक सिद्धान्त की ही अभिव्यक्तियाँ प्रतीत होती है।

4. प्रत्ययवादियों का कहना है कि मानव–सभ्यता के प्रारम्भ से ही आज तक अनेक दार्शनिक तथा वैज्ञानिकों का अनुभवातीत सत्ता में विश्वास है तो, सम्भवतः आनुभविक सत्ता के अतिरिक्त अनुभवातीत सत्ता का भी अस्तित्व अवश्य है।
5. प्रत्ययवाद के अनुसार समग्र विश्व में अधिकतर लोग कुछ स्थायी मूल्यों में विश्वास रखते है। मानव–संस्कृति, सभ्यता, विधि आदि सर्वस्वीकृत मूल्यों पर ही आधारित होते हैं।

इस प्रकार प्रत्ययवाद के ये उपरोक्त निष्कर्ष मानव–ज्ञान की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है और इनके कारण ही भारतीय एवं पाश्चात्य दोंनो दर्शनों में अनेक नवीन अनुसंधान हुए है, जिन्होने न केवल दर्शन अपितु धर्म को भी बहुत अधिक प्रभावित किया है, परिणामस्वरूप मानव को जीवन जीने के अनेक नवीन मार्ग प्राप्त हुए।

अर्थक्रियावादी पद्धति (Pragmatic Method)

अर्थक्रियावादी एक ऐसी दार्शनिक पद्धति है, जिसके अनुसार किसी भी सत्ता की यथार्थता प्रयोग एवं उपयोगिता के आधार पर निश्चित की जाती है। इस पद्धति के अनुसार ऐसी कोई भी सत्ता नहीं है, जिसे 'परम तत्त्व' अथवा 'परमार्थ सत्य' कहा जा सके, क्योंकि सत्य का मूल्य–निर्णय उसकी उपयोगिता को देखने के बाद ही निर्धारित किया जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जिस वस्तु एवं तत्त्व की व्यावहारिक उपयोगिता है तो वह यथार्थ है। इसी प्रकार वह प्रत्यय एवं विचार यथार्थ है जो चिन्तन–प्रक्रिया में सहायता देता है अथवा जीवन की व्यावहारिक क्रियाओं में सहायक होता हैं। अर्थक्रियावाद एक ऐसी दार्शनिक पद्धति है जिसका मानव–समस्याओं से गहरा सम्बन्ध रहा है। इसका मानववाद से गहरा सम्बन्ध है, क्योंकि यह मानव–जीवन और उसकी समस्याओं का दर्शन है। इस पद्धति के द्वारा मानव–जीवन की समस्याओं को सुलझाने के उपाय सुझाए जाते हैं। अतः अर्थक्रियावाद एक प्रकार का रचनात्मक एवं परिवर्तनशील दार्शनिक सिद्धान्त है। अर्थक्रियावाद अथवा व्यावहारवाद एक ऐसा जनप्रिय दार्शनिक सिद्धान्त है, जिसमें गणतंत्र की कुछ विशेषताएं भी पायी जाती हैं। यही कारण है कि इस सिद्धान्त को जनता का दार्शनिक सिद्धान्त भी कहा जाता है, क्योंकि इस सिद्धान्त में तत्त्वमीमांसा की जटिल समस्याओं पर सूक्ष्म रूप से विचार करने की अपेक्षा साधारण जनता की समस्याओं पर विचार किया जाता है। अतः यह एक अत्यन्त सहज, प्रयोजनात्मक एवं प्रगतिशील दार्शनिक सिद्धान्त है, जिसका प्रचार अमरीका में विशेष रूप से हुआ, जिसके फलस्वरूप अमरीकी लोगों पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

अर्थक्रियावादी पद्धति में तार्किक कठोरता का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है और इसी कारण से अर्थक्रियावादीयों ने तत्त्वमीमांसा को व्यावहारिक दृष्टिकोण से अर्थहीन एवं निकम्मा बताया, परन्तु साथ ही अर्थक्रियावादी दार्शनिकों की सैद्धान्तिक समस्याओं पर भी विचार नहीं किया। इसीलिये अर्थक्रियावाद में तार्किक कठोरता एवं बौद्धिक उत्कर्ष नहीं दिखाई देता। परन्तु पर्स के अर्थक्रियावादी सिद्धान्त पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से उनके दार्शनिक सिद्धान्त में अनेक उच्चस्तरीय विचार दिखाई पड़ते है। पर्स के दार्शनिक विचार विशेषरूप से इसीलिए सराहनीय है, क्योंकि उन्होंने कोई भी सम्पूर्ण ग्रन्थ नहीं लिखा। उनके उच्च कोटि के दार्शनिक विचार उनके संगृहीत लेखों और निबन्धों में मिलते हैं। परन्तु पर्स को छोड़कर शेष अर्थक्रियावादी दार्शनिको के विचारों में गरिमा का अभाव है। विशेषरूप से जेम्स के दार्शनिक विचारों में तुच्छता स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। अर्थक्रियावाद की प्रमुख विशेषता यह रही है कि इसका मानव के व्यावहारिक जीवन और उसके विचारों पर बड़ा भारी प्रभाव रहा है और अमेरिका के अधिकतर दार्शनिक एवं आम जनता अर्थक्रियावादी पद्धति के द्वारा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित हुए हैं और परिणामस्वरूप अमरीका के लोगों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदल गया है। अब वे प्रत्येक कार्य पर उपयोगिता के दृष्किोण से विचार करते है। अमरीकी सभ्यता में आर्थिक एवं सांस्कृतिक उन्नति अर्थक्रियावादी दार्शनिक सिद्धान्त के प्रभाव से हुई है और लोगों की कार्य में दक्षता, अर्थक्रियावादी दार्शनिक सिद्धान्त पर विश्वास के कारण हुई है और अर्थक्रियावादी दृष्टिकोण अमरीकी लोगों की विचारधारा ही बन गया है। वर्तमान काल में न केवल अमरीका के लोग अर्थक्रियावादी विचारधाराओं पर विश्वास रखते हैं, अपितु लगभग हर सभ्य समाज के लोगों का इन विचारधाराओं पर विश्वास है। परिणामस्वरूप अर्थक्रियावादी विचार–धाराओं का पालन सभ्य समाज के लोगों के जीवन का चरम लक्ष्य सा बन गया है। इस विचारधारा को वर्तमानकाल का युगधर्म कहा जा सकता है। इस दृष्टिकोण से अर्थक्रियावादी विचारधारा समाजवादी विचारधारा से मिलती है, अथवा यह कहा जा सकता है कि समाजवाद के बीज अर्थक्रियावाद में मिलते है।

चूँकि अर्थक्रियावादी सिद्धान्त जनतन्त्र के आदर्शों पर आधारित है, इसीलिये जनतन्त्र का प्रसार व्यापक रूप से पाश्चात्य देशो के साथ–साथ पूर्वी देशों में भी हो रहा है। इसी कारण से समाजवाद का प्रसार भी विश्वभर में जोर पकड़ रहा है। जनतन्त्र और समाजवाद की अलग–अलग विचारधाराएं अत्यन्त प्रगतिशील है और मानव–सभ्यता को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने का प्रयत्न करती है। दूसरी ओर अनुभववाद को अर्थक्रियावादी विचारों से सहारा मिला है। इस बात को सभी शिक्षित लोग स्वीकार करने लगे हैं कि उपयोगिता के बिना किसी भी प्रत्यय पर विश्वास करना युक्तिसंगत नहीं हैं। प्रत्ययों की उपयोगिता वैज्ञानिक विधि एवं तार्किक संगति की सहायता से की जा सकती है। इसी कारण से अर्थक्रियावाद में वैज्ञानिक विधि पर बल दिया गया है और यह तकनीक के विकास पर भी महत्त्व देता है, जिससे लोककल्याण सरलता से हो सके। इस तरह मानव मूल्यों पर भी अर्थक्रियावाद का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा हैं। उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि अर्थक्रियावाद वर्तमान युग का एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक दृष्टिकोण एवं पद्धति है।

प्रकृतिवादी पद्धति (Naturalistic Method)

दर्शन में प्रकृतिवादी एक ऐसी पद्धति है जो प्रकृति को ही वास्तविक सत्ता (Reality)मानती है और इसमें प्रकृति के अलावा और किसी सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया है। परन्तु कुछ दार्शनिक अतिप्राकृतिक सत्ता में विश्वास करते है, जो कि प्रकृति के बाहर है। परन्तु प्रकृतिवाद अतिप्राकृतिक सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। प्रकृतिवाद विशेषरूप से द्वैतवाद को स्वीकार नहीं करता। प्रकृतिवाद के अनुसार भौतिक एवं मानसिक पदार्थ में द्वन्द्व नहीं है और मन एवं देह में भी परस्पर विरोध एवं द्वन्द्व नहीं है, जिस प्रकार दैतवादी दार्शनिक कहते है। कुछ दार्शनिकों का मानना है कि भौतिक पदार्थ को मानसिक पदार्थ में रूपांतरित किया जा सकता है, अथवा मानसिक पदार्थ को भौतिक पदार्थ में रूपांतरित किया जा सकता है, परन्तु ऐसा सोचना दोषपूर्ण है, क्योंकि प्रकृति में जो भी कुछ पाया जाता है, सभी सत्य है। प्रकृति में पाई जाने वाली प्रत्येक वस्तु यथार्थ है और वस्तुओं में सम्बन्ध भी यथार्थ हैं और प्रकृति में होने वाली समस्त घटनाएं यथार्थ है और यही कारण है कि प्रकृति में घटने वाली सभी घटनाओं का अध्ययन प्रकृतिवाद में किया जाता हैं। प्रकृतिवाद के अनुसार मानव–समाज एवं सभ्यता की प्रगति प्राकृतिक नियमों के अनुसार हुई है। फ्रान्स में एमिल जोला प्रकृतिवाद के प्रमुख समर्थक दार्शनिक थे, जिनका मत था कि मानव अति शीघ्र बुराई, पाप एवं अवनति की ओर बढ़ रहा है। मानव जाति का इतिहास हमेशा ऐसा ही रहा है और भविष्य में भी मानव–जाति पाप एवं अनिवार्य अवनति से नहीं बच सकती। यही प्रकृति का अटल नियम हैं। 17वीं एवं 18वीं शताब्दियों में प्रकृतिवादी दार्शनिकों ने अध्यात्मवाद के विरूद्ध आवाज उठायी थी और उन्होंने अनुभवातीत परम तत्त्व की कड़ी आलोचना की। उन्नीसवीं सदी में प्रकृतिवादी दार्शनिक, डार्विन के विकास के सिद्धान्त द्वारा प्रभावित हुए थे। काम्टे एवं स्पेंसर द्वारा प्रतिपादित वस्तुनिष्ठवाद बीसवीं सदी के नये प्रकृतिवाद का आधार बना। आधुनिक प्रकृतिवाद में इस बात पर बल दिया जाता है कि प्रकृति के अतिरिक्त और कोई सत्ता नहीं हैं, जो मानव क्रियाओं को प्रभावित करती है। मानव की इच्छा के अनुरूप अथवा उसकी इच्छा के विरूद्ध प्रकृति में कोई भी घटना नहीं घटती। मानव की वासनाओं, रूचियों आदि से प्रकृति का कोई सम्पर्क नहीं है। प्रकृति में घटनाएं मानव–उद्देश्यों, रूचियों, मूल्यों आदि की उपेक्षा करती हुई घटित होती है। प्रकृतिवाद के प्रमुख दार्शनिक सान्तायना के अनुसार दार्शनिक अथवा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से किसी भी तत्त्व के अस्तित्व के विषय में मानव को निश्चित रूप से ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से केवल संशयवाद का समर्थन किया जा सकता है और जितना भी ज्ञान मानव–व्यक्तित्व को प्राप्त हो सकता है, वह केवल उसके विश्वास पर ही निर्भर होता है।

वास्तववादी पद्धति (Realistic Method)

वास्तववादी पद्धति के अनुसार बाह्य जगत् का यथार्थ अस्तित्व है, क्योंकि साधारण अनुभव द्वारा लोगों को यह स्पष्ट ज्ञान होता है कि बहिर्जगत् का अस्तित्व यथार्थ है और वैज्ञानिक अनुसंधान के द्वारा भी यह सिद्ध होता है कि बहिर्जगत् का अस्तित्व यथार्थ है। इस दृष्टि से वास्तववाद के अनुसार,, ज्ञाता एवं ज्ञेय दोनों ही यथार्थ हैं। सहज वास्तववाद (Naïve Realism) के अनुसार भी यह बताया जाता है कि बहिर्जगत का अस्तित्व ज्ञाता से स्वतंत्र है। जैसे यह सभी जानते है कि पहाड़, नदी, वृक्ष आदि का अस्तित्व यथार्थ है और इन जैसे सभी पदार्थ ज्ञाता से एकदम स्वतन्त्र है। इस सरल वास्तववाद के अनुसार जिस समय किसी व्यक्ति को किसी वस्तु के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है, उसी समय उस वस्तु से सम्बन्धित प्रत्यय यथार्थ होता है। यह प्रत्यय उस ज्ञात वस्तु की प्रतिकृति होता है और वह वस्तु की सभी विशेषताओं को यथार्थ रूप से निरूपित करता है। वैज्ञानिक विधि के प्रयोग द्वारा भी दार्शनिक इस बात को स्पष्ट रूप से जानते है कि बहिर्जगत् की सभी वस्तुएं यथार्थ हैं। ऐसे वास्तववाद को वैज्ञानिक वास्तववाद कहा जाता है। समीक्षात्मक विवेचन के द्वारा भी यह बात सिद्ध होती है कि ज्ञाता से वस्तुएं भिन्न हैं और उनका स्वतन्त्र अस्तित्व है। ऐसे वास्तववाद को समीक्षात्मक वास्ववाद कहा जा सकता है। वास्तववाद के अनुसार वस्तुएं स्वतंत्र रूप से बहिर्जगत् में विद्यमान रहती है और उनको मनुष्य ज्ञानक्रिया द्वारा जानता है। वह पहले तो इन वस्तुओं के अस्तित्व को अपनी इन्द्रियों के माध्यम से जानता है और फिर इसके उपरान्त बौद्धिक विश्लेषण द्वारा उनको अच्छी तरह से समझता है। इस तरह से वह वस्तुओं के बारे में प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त करता है। वास्तववाद के प्रमुख दार्शनिक आर0 बी0 पेरी के अनुसार,''वास्तववाद का मूल सिद्धान्त यह है कि ज्ञाता वस्तुओं को साक्षात् रूप से जान लेता है। पेरी आगे बताते है कि इन्द्रियपरक सामग्री का स्वतंत्र अस्तित्व होता है और यही कारण है कि ज्ञाता उसको इन्द्रियों के माध्यम से जान सकता है। ज्ञाता इन्द्रियपरक–सामग्री को साक्षात् रूप से जानता है। नव्य–वास्तववाद के अनुसार, ज्ञाता साक्षात् रूप से वस्तु को जान सकता है। ज्ञाता एवं ज्ञेय में सम्पर्क स्थापित करने के लिए और किसी सत्ता अथवा सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं होती। ज्ञाता अपनी चेतना के माध्यम से वस्तु को साक्षात् रूप से जान सकता है। वस्तु का अस्तित्व पूर्ण रूप से स्वतंत्र होता है, चाहे उसके विषय में किसी मनुष्य को ज्ञान हो या न हो। जी0ई0मूर, बर्टेन्ट रसेल तथा आर0बी0 पेरी वास्तववाद के प्रमुख दार्शनिक है।

तार्किक प्रत्यक्षवादी पद्धति (Logical Positivistic Method)

बीसवीं सदी में तार्किक प्रत्यक्षवादियों की पद्धति ने दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में एक बड़ी भारी क्रान्ति उत्पन्न की है, क्योंकि उन्होंने प्राचीन काल के दर्शनशास्त्र को अर्थहीन एवं अनुपयोगी बताया है। उन्होंने प्राचीन एवं परम्परागत दार्शनिक सिद्धान्तों की कड़ी आलोचना की जिसके परिणामस्वरूप तत्त्वदर्शन का ढाँचा ही टूट गया, क्योंकि तार्किक प्रत्यक्षवादी पद्धति में यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया कि तत्त्वदर्शन में जितनी भी प्रतिज्ञप्तियाँ है, वे सभी अर्थहीन है और परम्परागत तत्त्वमीमांसा का

सिद्धान्त भी अर्थहीन है। इसका कारण यह है कि तत्त्वमीमांसा न तो तर्कशास्त्र पर और न ही वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित होती है अर्थात् तत्त्वमीमांसा के प्रत्यय अनुभवों पर आधारित न होने के कारण व्यावहारिक दृष्टिकोण से अर्थहीन होते है। तार्किक प्रत्यक्षवाद के अनुसार अनुभव ज्ञान प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। उनके अनुसार जो प्रत्यय अनुभवातीत हैं, उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। इस प्रकार दार्शनिक दृष्टिकोण से उन प्रत्ययों का प्रयोग करना उचित नहीं है और दार्शनिक चिन्तन में परिकल्पना का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। दर्शनशास्त्र का बहुत गहरा सम्पर्क तर्कशास्त्र एवं विज्ञान से होता है। तार्किक विश्लेषण द्वारा चिन्तन में त्रुटियों का पता लगाया जा सकता है और उन दार्शनिक सिद्धान्तों को त्याग दिया जाता है जो तार्किक दृष्टिकोण से त्रुटियुक्त है। तार्किक प्रत्यक्षवाद का प्रचार वियाना और केम्ब्रिज में बहुत अधिक हुआ और इसके बाद सम्पूर्ण विश्व में इसका खूब प्रचार हुआ। वियाना विश्वविद्यालय में अनुभववाद का प्रचार बहुत वर्षों तक होता रहा और यहाँ लॉक ने अनुभववाद पर बहुत बल दिया गया। मॉरिस शिलक भी इसी विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के अध्यापक थे और उन्होंने भी अनुभववाद पर बहुत बल दिया और शिलक ने कुछ विद्वानों के सहयोग से एक विचार गोष्ठी बनाई थी। जिसमें रूडाल्फ कार्नप, ऑटो न्यूरॉथ आदि सदस्य थे, जो इस विचार–गोष्ठी में दार्शनिक समस्याओं पर विचार किया करते थे। यह विचार गोष्ठी **वियाना केन्द्र** (Vienna Circle) के नाम से प्रसिद्ध है। वियाना केन्द्र के सदस्य ज्ञान की विधि द्वारा दार्शनिक समस्याओं का समाधान करना चाहते थे और उन्होंने इस कार्य के लिए अनुभव को ज्ञान प्राप्त करने का यथार्थ साधन बनाया। उनका लक्ष्य यह था कि दार्शनिक विचार विज्ञान के आधार पर किया जाना चाहिये। उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि दार्शनिक प्रत्ययों का अच्छी तरह से तार्किक विश्लेषण करना चाहिए, क्योंकि दर्शनशास्त्र का मुख्य लक्ष्य प्रत्ययों का तार्किक विश्लेषण करना है। वियाना केन्द्र पर लुडविग विट्गेन्स्टाइन का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा। विट्गेन्स्टाइन की **"Tractatus Logico Philosophicus"** एक बहुत ही क्रान्तिकारी पुस्तक है, जिसका गम्भीर प्रभाव तार्किक प्रत्यक्षवादियों पर पड़ा। विटगेन्स्टाइन के अनुसार,' दर्शनशास्त्र का लक्ष्य है कि दार्शनिक विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाए। दर्शनशास्त्र में सिद्धान्त–रचना नहीं की जाती, परन्तु इसमें केवल विचारों का स्पष्टीकरण किया जाता है। परम्परागत दार्शनिक सिद्धान्तों के सन्दर्भ में यह एक बहुत बड़ा क्रान्तिकारी विचार है, जिसे विटगेन्स्टाइन ने तार्किक प्रत्यक्षवादियों के सम्मुख रखा। तार्किक प्रत्यक्षवादियों ने विटगेन्स्टाइन के इस नवीन दार्शनिक दृष्टिकोण पर ध्यानपूर्वक विचार करने के उपरान्त कुछ मुख्य सिद्धान्तों को स्वीकार भी किया। वियाना केन्द्र के दार्शनिको ने सन् 1929 में अपने सम्मुख एक कार्यक्रम रखा, जिसमें विज्ञान पर आधारित विश्व का एक प्रत्यय बनाया गया और तार्किक प्रत्यक्षवादियों ने ऐसा सोचा कि विभिन्न विज्ञानों का समन्वय किया जा सकता है और इन विज्ञानों के समन्वय से ज्ञान की नवीन रचना की जा सकती है, जिसे प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति आसानी से समझ सकता हैं। कार्नप इस कार्यक्रम के सबसे बड़े समर्थक थे। उन्होंने अपनी पुस्तक **"Logical Construction of the World"** में इस दृष्टिकोण की विस्तृत व्याख्या की।

वियाना केन्द्र के इस नये कार्यक्रम में अनेक प्रबुद्ध विद्वानों का योगदान रहा, जिनमें हेन्स हान एक गणितज्ञ थे और ऑटो न्यूरथ एक समाज वैज्ञानिक थे तथा शिलक और राइशेनवाक भौतिकविद् थे एवं विक्टर क्राफ्ट दार्शनिक थे। इनके अलावा इस केन्द्र में और भी अनेक विद्वानों ने योगदान दिया। इस केन्द्र में दार्शनिक विचार बहुत ही उच्च स्तर के हुआ करते थे, क्योंकि इसके सदस्य उच्चस्तर के विद्वान थे। इस केन्द्र के सभी सदस्य इस बात पर सहमत थे के तत्त्वमीमांसा के स्थान पर तर्कशास्त्र, गणित एवं विज्ञान के प्रत्ययों को प्रयोग में लाना उचित समझा जाये। उन्होंने निरपेक्ष चिन्तन के लिए अपने मन से कट्टरता को निकाल देना उचित समझा और इन सभी ने अपना मुख्य लक्ष्य यह बनाया कि सबके सम्मिलित प्रयत्न से स्पष्ट ज्ञान किस तरह से प्राप्त किया जा सकता था। इस प्रकार तार्किक प्रत्यक्षवाद का सम्पूर्ण विश्व में प्रचार होने के कारण अधिकतर दार्शनिकों के मत में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। अधिकतर दार्शनिकों ने तार्किक प्रत्यक्षवाद की निम्नलिखित कुछ बातों को स्वीकार किया जैसे :–

1. तत्त्वमीमांसा की समस्याओं पर दार्शनिक विचार करने का कोई लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि इसकी सभी प्रतिज्ञप्तियाँ अर्थहीन है, क्योंकि उनका अनुभव संभव नहीं है।
2. प्रत्ययों की यथार्थता को जानने के लिए उनका तार्किक विश्लेषण करना अत्यन्त आवश्यक है।
3. तर्कशास्त्र, गणित एवं वैज्ञानिक विधि ज्ञान प्राप्त करने के यथार्थ साधन है।
4. मानव जीवन के मूल्य मानव द्वारा स्वयं बनाये गये है।

इस प्रकार तार्किक प्रत्यक्षवादीयों ने ज्ञान के क्षेत्र में बहुत तोड़–फोड़ का काम किया। प्रथम विश्व–युद्ध के समय व्यापक मानव संहार किया गया और शहर एवं गांव बर्बाद किए गए। तार्किक प्रत्यक्षवादीयों ने तत्त्वमीमांसा, नीतिशास्त्र, धर्म आदि को तोड़ा–फोड़ा और तोड़–फोड़ का यह कार्य उसी स्थिति में तर्कसंगत समझा जा सकता है, जब विनाश के उपरान्त रचना की जाती है, और वह रचना पहले की रचना की तुलना में और अधिक अच्छी होती है, परन्तु तार्किक प्रत्यक्षवादीयों ने ऐसा नहीं किया। उन्हें केवल विनाश के कार्य में ही बहुत उल्लास मिला। तत्त्वमीमांसा का विनाश करने से कुछ अर्थों में अच्छा भी हुआ, क्योंकि बेकार तर्कों के आधार पर तत्त्वमीमांसा का बहुत–सा बेकार कचरा इकट्ठा हो गया था और उसका साफ होना बहुत जरूरी था। इन तार्किक प्रत्यक्षवादी दार्शनिकों ने इस कार्य को बड़ी कुशलतापूर्वक किया। परन्तु उन्होंने सबसे अधिक भूल यह की है कि दर्शनशास्त्र को 'विज्ञान का तर्कशास्त्र' कहा। इस तरह से उन्होंने दर्शनशास्त्र को विज्ञान का दास बना दिया। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया गया है कि दर्शनशास्त्र की अपनी

स्वतंत्र विशेषता है, और सम्भवतः ऐसी स्थिति भविष्य में भी रहेगी।

अस्तित्ववादी पद्धति (Existentialistic Method)

अस्तित्ववादी पद्धति एक ऐसी दार्शनिक पद्धति है, जिसमें मानव व्यक्तित्व एवं उसकी स्वतंत्रता को सबसे महत्वपूर्ण समझा जाता है। इस पद्धति के द्वारा मानव मूल्यों का नई तरह से अर्थ निकाला गया है। इस पद्धति के द्वारा बताया गया है कि मानव अपने ही प्रयत्न से अपने व्यक्तित्त्व को पूर्ण रूप से निर्मित करता है। यही कारण है कि इस सिद्धान्त को 'व्यावहारिक दर्शन' भी कहा जाता है, क्योंकि अस्तित्त्ववाद में मानव–जीवन की व्यावहारिक समस्याओं पर बहुत महत्त्व दिया जाता है। अस्तित्त्ववाद में प्रत्ययवादी दार्शनिक सिद्धान्तों की कड़ी आलोचना की गई है, क्योंकि प्रत्ययवाद में सार (essence) अथवा आध्यात्मिक तत्त्व को अधिक महत्त्व दिया है और कल्पना की गई है कि मानव व्यक्तित्व के अस्तित्व के पहले से ही आध्यात्मिक तत्त्व का अस्तित्व है। हेगेल, ब्रेड़ले आदि दार्शनिकों ने ऐसा ही कहा है, परन्तु अस्तित्त्ववादियों के अनुसार, मानव–अस्तित्त्व सार के अस्तित्व की पूर्वावस्था है। प्रत्ययवाद में मानव व्यक्तित्व के स्वरूप को ब्रह्म के स्वरूप पर ही निर्भर माना जाता है। अस्तित्त्ववादियों का यह कहना है कि मानव व्यक्तित्व की स्वतंत्रता यदि ब्रह्म की स्वतंत्रता पर निर्भर करती हो तो वह वास्तविक स्वतंत्रता नहीं है। ऐसी स्थिति में मानव–व्यक्तित्व की स्वतंत्रता भ्रममात्र है। किन्तु अस्तित्ववादी मानव–व्यक्तित्व की स्वतंत्रता को प्राथमिक एवं आधारभूत समझते हैं।

अस्तित्त्ववादियों ने प्रकृतिवाद की भी आलोचना की, क्योंकि प्रकृतिवाद में यह बताया जाता है कि सभी प्राकृतिक घटनाएं भौतिक नियमों द्वारा नियंत्रित होती हैं। मानव व्यक्तित्व का व्यवहार भी भौतिक नियमों के द्वारा नियंत्रित होता है, क्योंकि मानव व्यक्तित्व भौतिक सत्ता की ही अभिव्यक्ति है। अस्तित्त्ववादियों के अनुसार, मानव व्यक्तित्व का ऐसा अर्थनिर्णय भी त्रुटियुक्त है। मानव व्यक्तित्व की स्वतंत्रता आधारभूत एवं महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। अस्तित्त्ववादियों ने वैज्ञानिक दर्शन की भी कड़ी आलोचना की है, क्योंकि वैज्ञानिक दर्शन में विज्ञान का अनुकरण किया जाता है, और वैज्ञानिक–दार्शनिक कठिन वैज्ञानिक प्रत्ययों का प्रयोग करते हैं। यही कारण है कि विज्ञान का अनुकरण करने के कारण दर्शनशास्त्र को हानि पहुंची है। अस्तित्त्ववादीयों ने दर्शनशास्त्र को विज्ञान के प्रभाव से बचाने का प्रयत्न किया है, क्योंकि विज्ञान में मानव मूल्यों को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता, किन्तु अस्तित्त्ववादीयों के अनुसार मानव मूल्य प्राथमिक एवं आधारभूत हैं। विज्ञान इन मूल्यों के अधीन है। इस प्रकार दर्शनशास्त्र को विज्ञान से प्रेरणा न लेकर मूल्य–शास्त्र से प्रेरणा लेनी चाहिए। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् जिस समय युरोप में अस्तित्ववाद का प्रचार हुआ, उस समय इस मत के समर्थक विश्वविद्यालयों के दार्शनिको से दूर ही रहते थे और वे अपने मत की होटल, अपने घर आदि स्थानों पर ही चर्चा किया करते थे, परन्तु समय बीतने पर अस्तित्ववाद का महत्त्व बढ़ने लगा। अस्तित्ववाद का प्रभाव साहित्य, कला, नाटक आदि पर भी गहरे रूप में पड़ा। धीरे–धीरे दार्शनिक भी इस दार्शनिक सिद्धान्त द्वारा प्रभावित होने लगे। दार्शनिक अस्तित्त्ववादीयों का यह मत स्वीकार किया जाने लगा कि मानव–अस्तित्व बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। परम्परागत दर्शनशास्त्र में मानव–व्यक्तित्व के स्वरूप एवं उसके जीवन की परिस्थितियों पर महत्त्व नहीं दिया जाता था और परम तत्त्व, अमरता आदि समस्याओं पर ही अधिक विचार किया जाता था, परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद मानव समाज की परिस्थितियां इतनी जटिल हो गई कि मानव समस्याओं पर ध्यान देना अनिवार्य हो गया और औद्योगिकी के विस्तार के कारण मानव–व्यक्तित्व अपने महत्त्व को धीरे–धीरे खोने लगा और इस प्रकार अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने मानव–व्यक्तित्व के विघटन की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। अस्तित्ववाद के अनुसार मानव व्यक्तित्व आधुनिक सभ्यता की भीड़ में खोया हुआ रहता है। मशीनों के सम्पर्क में अधिक रहकर मानव–व्यक्तित्व के महत्त्व का बहुत अधिक मात्रा में क्षय हो चुका है। मानव के लिए यह उचित है कि वह अपने खोए हुए एवं क्षयप्राप्त व्यक्तित्व को पुनः जीवित कर अपने पुराने महत्त्व को एक बार फिर स्थापित करे। मानव–व्यक्तित्व की स्वतंत्रता ही उसका ऐश्वर्य हैं। वह स्वतंत्र होने के कारण अपने कार्यो के प्रति स्वयं उत्तरदायी है।

इस प्रकार अस्तित्ववाद की उत्पत्ति मानव–व्यक्तित्व के नैराश्य से हुई है। आधुनिक युद्ध के हानिकर परिणामों को झेलने के कारण मानव आज युद्ध के भय से संतप्त और परेशान हैं और मानव यान्त्रिक सभ्यता के निरन्तर प्रसार के कारण भी भयभीत रहता है। औद्योगिक विकास के कारण विभिन्न प्रकार के यन्त्रों को सतत प्रयोग में लाया जाता है। मानव–व्यक्तित्व के कार्य यन्त्र द्वारा ही किए जाने लगे हैं, जिसके कारण मानव–व्यक्तित्व की मेहनत का मूल्य घट गया है और वह निरूद्देश्य समाज की भीड़ में भटक रहा है। इस भीड़ में चलते हुए मानव अपने व्यक्तित्व की अद्वितीयता को खो चुका है। वह इस बात से पीड़ित है कि उसके व्यक्तित्व का महत्व घटता जा रहा है। इस पीड़ादायक अनुभव के कारण उसके जीवन में निराशा छा गई है। मानव इस निराशा द्वारा परेशान होकर समाज के विरूद्ध अपना असन्तोष प्रकट करता है और वह निरन्तर प्रयत्न करता है किस तरह से जीवन की समस्यओं को दूर किया जा सकता है। अस्तित्ववाद में मानव को ही केन्द्र में रखा जाता है और इसमें परम तत्त्व, ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा आदि तत्त्वमीमांसीय तत्त्व उतने महत्त्वपूर्ण प्रत्यय नहीं हैं, जितना की मानव–व्यक्तित्व का प्रत्यय। इनका मानना है कि मानव का विकास प्रकृति के विकास क्रम के माध्यम से हुआ है। अस्तित्ववाद में मानव को समाज से अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है। मानव के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वह समाज के नियमों का पालन करे। यदि सामाजिक नियम मानव की स्वतंत्रता में बाधा डालते हैं, तो मानव के लिए यह उचित है कि वह समाज के नियमों का विरोध करे। वर्तमान समय में प्रत्येक मानव के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने महत्त्व को अच्छी तरह से पहचाने और अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करे।

विश्लेषणात्मक दार्शनिक पद्धति (Analytical Philosophical Method)

विश्लेषणात्मक दार्शनिक पद्धति के द्वारा मुख्य रूप से भाषा का अध्ययन किया जाता है। वैसे भाषा का अध्ययन भाषा–शास्त्र, व्याकरण, शब्द–शास्त्र आदि में भी होता है। विश्लेषणात्मक दर्शन इन अध्ययनों से सहायता ले सकता हैं, परन्तु यह भाषा का अध्ययन इन सबों से भिन्न ढंग से करता है, तथा भिन्न उद्देश्य से करता हैं। इन सभी अध्ययनों का उद्देश्य भाषा–सम्बन्धी जानकारी है, भाषा के स्वरूप, भाषा की संरचना, भाषा का विन्यासात्मक रूप आदि के सम्बन्ध में जानकारी जुटाना है। यही कारण है कि इन सभी अध्ययनों का लक्ष्य भाषा की वैज्ञानिक जानकारी है। इस प्रकार इन सभी अध्ययनों की विधि किसी–न–किसी प्रकार वैज्ञानिक है ही। इनके द्वारा भाषा के स्वरूप, भाषा की संरचना एवं भाषीय प्रयोगों के विषय में वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त होती है। परन्तु यह विश्लेषणात्मक दर्शन का लक्ष्य नहीं है। उसका लक्ष्य दार्शनिक है। उसका उद्देश्य एक ऐसी विधि को पकड़ना है, जिसके द्वारा दार्शनिक समस्याओं का निदान किया जा सकता हैं। इनकी मान्यता है कि भाषीय प्रयोगों की अस्पष्टता, अनेकार्थकता आदि के कारण दार्शनिक समस्याएँ समस्या बनकर उभरती है, परन्तु विश्लेषण पद्धति के द्वारा इस प्रकार की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। कुछ विचारकों का कहना है कि जिस प्रकार प्रत्येक विज्ञान–विचार की प्रत्येक शाखा–का अपना शब्द–भंडार तथा अपना भाषीय ढंग होता है, उसी प्रकार दर्शन को भी अपना शब्द–भण्डार और अपना भाषीय ढंग तय करना है। इस प्रकार विश्लेषणवादी दार्शनिको ने एक 'आदर्श भाषा' की कल्पना की, इन लोगों ने एक सर्वथा नवीन, नियमनिष्ठ तार्किक भाषा की बात की और एक सर्वथा कृत्रिम भाषा की कल्पना की जिसके द्वारा भाषा सम्बन्धी समस्याओं का समाधान आसानी से किया जा सके। इन विचारको का कहना है कि हमारी प्राकृतिक भाषायें अथवा साधारण बोलचाल की भाषा अनिवार्यतः अस्पष्ट, अनेकार्थक तथा भ्रान्तिजनक होती है। अतः विश्लेषण का अर्थ है कि प्रत्येक अन्य प्रकार के भाषीय कथन का इस नियमनिष्ठ कृत्रिम भाषा में रूपान्तरण। इनकी मान्यता है कि मात्र इसी प्रकार के विश्लेषण से भाषीय कथनों में निश्चयता की खोज हो सकती है। तार्किक भाववादी, तार्किक अणुवादी तथा ट्रैक्टेटस का विचारक अपने–अपने ढंग से इसी प्रकार के विश्लेषण को प्रयोग मे लाते है।

विश्लेषणात्मक विचारकों की विश्लेषणात्मक पद्धति का परिचय अलग से नहीं, बल्कि इस विधि के प्रयोगों के माध्यम से ही मिलेगा। राइल ने विस्तृत रूप में **मन** (Mind) से सम्बधित विभिन्न विचारों का विश्लेषण किया है, तथा उस प्रक्रिया में इस क्षेत्र की परम्परागत एवं नवीन आयामों को स्पष्ट किया है। इस अध्ययन के लिये उन्हें एक केन्द्र ढूंढना था, जो उनके विश्लेषणात्मक प्रहार का केन्द्र हो और राईल ने ऐसा केन्द्र मन–सम्बंधी उस सिद्धान्त को बनाया जिसे वे अधिकारी सिद्धान्त कहते है। यह सिद्धान्त जिसके प्रणेता **डेकार्ट** है। राइल के अनुसार यह अधिकारी सिद्धान्त किसी न किसी रूप में मन सम्बन्धी प्रत्येक सिद्धान्त का अंग बना हुआ है। यह विश्वास किया जाता है कि सभी मनुष्य में एक शरीर है, और एक मन है। सामान्य रूप से दोनों एक साथ मानव में कार्यरत रहते हैं, संभवतः मृत्यु में शरीर की हानि हो जाती है, मन की नहीं। डेकार्ट ने तो साधारण जीवन में इन दोनों की क्रिया–प्रतिक्रिया की भी बात बताई है। राइल कहते है कि यह अधिकारी सिद्धान्त एक प्रकार से भौतिक ढांचे में मानसिक तत्त्व को बिठा देता है। यही कारण है कि डेकार्ट के मन सम्बंधी इस सिद्धान्त को मशीन में स्थित प्रेत का सिद्धान्त कहा गया है। राइल का कहना है कि डेकार्ट के समय से ही एक विशेष ढंग से मानसिक शक्तियों तथा मानसिक क्रियाओं की अवधारणाओं का प्रयोग एवं उपयोग होता रहा है, परन्तु राइल के अनुसार जिन मानसिक शक्तियों की अवधारणाओं का उपयोग होता है, वे आधृत है एक भ्रान्ति पर और एक काल्पनिक भाव पर और इस भ्रान्ति अथवा काल्पनिक भाव का नाम है 'मशीन में स्थित प्रेत' का सिद्धान्त, जो मान लेता है कि 'मन' एक प्रेत के समान है, जो शरीररूपी मशीन में स्थित है। राइल अपनी विश्लेषणात्मक पद्धति के द्वारा इस जैसी ही भ्रान्ति को दूर करने का प्रयास करते है।

मशीन में स्थित प्रेत के सिद्धान्त को राइल काल्पनिक तथा भ्रामक कहते है। इसी का खण्डन राइल ने किया है। राइल के अनुसार काल्पनिक भाव क्या होता है। शास्त्रीय चर्चा में काल्पनिक भाव से परियों की कहानी का बोध नहीं होता। राइल कहते है कि जब वे इस सिद्धान्त को काल्पनिक भाव कह रहे है, तो वे इसके वैचारिक आधार को स्पष्ट कर रहे है। उनका कहना है कि हम जब एक कोटि के तथ्यों को ऐसे वाक्य व्यवहारों में व्यक्त करते है, जो वाक्य–व्यवहार उस कोटि के अनुरूप ही नहीं, बल्कि उससे सर्वथा भिन्न कोटि के अनुरूप हैं, तो जो उजागर होता है, वह काल्पनिक भाव है। यही कारण है कि काल्पनिक भाव को खण्डित करने के लिए उन तथ्यों का निषेध नहीं करना है, अपितु उन तथ्यों को उनके अनुरूप कोटियों के साथ जोड़ देना है। मन संबन्धी मशीन में स्थित प्रेत सिद्धान्त में भी यही भूल हुई है, यहॉ भी मन–सम्बन्धी तथ्यों को ऐसी कोटि के साथ जोड़ा गया है, जिसके अनुरूप वे नहीं है। राइल ने अपने विश्लेषण सिद्धान्त के निषेधात्मक पक्ष में यही स्पष्ट किया। इसी सन्दर्भ में राइल ने कोटि–दोष का उल्लेख किया है। वे स्पष्ट रूप से कहते है कि उनका उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि 'मशीन में स्थित प्रेत' का हठमत (Dogma) पूर्णतया असत्य है और यह अपने विवरण या विशदीकरण में असत्य नहीं, बल्कि सिद्धान्तः असत्य है। इसके खण्डन में मात्र यह नहीं दिखाना है कि इस मत के प्रतिपादन में अनेकों भूलें हुई हैं, बल्कि यह भी दिखाना है कि इसमें एक बड़ी भारी भूल हुई है अर्थात् एक विशेष प्रकार की भूल हुयी हैं। उसी भूल को वे कोटि दोष (Category Mistake) कहते हैं। उनका कहना है कि यह सिद्धान्त अनेकों कोटि–दोष के उत्पन्न होने का कारण भी बन जाता है। राइल ने इस कोटि–दोष को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण दियें हैं, जैसे मान लें एक विदेशी दर्शनार्थी पहली बार आक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज घूमने जाता

P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-2* May- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

हैं। उसे वहाँ कॉलेजों को दिखाया जाता है, पुस्तकालयें, खेल के मैदानों, संग्रहालयों, शासकीय भवनों, विज्ञान केन्द्रों आदि को दिखाया जाता है और उसके बाद वह पूछता हैं, लेकिन विश्वविद्यालय कहाँ है ? तब उसे यह समझाना पड़ता है कि विश्वविद्यालय कोई इन जैसा पृथक संस्था नहीं, बल्कि वह व्यवस्था है, जिसमें जिन्हें उसने देखा है वे सभी संगठित–व्यवस्थित हैं। प्रश्न है कि उसकी भूल कहां पर है ? उसकी भूल इस भ्रान्ति में है कि उसने सोच लिया कि जिस प्रकार कॉलेज, संग्रहालय आदि संस्थाएँ है, उसी प्रकार विश्वविद्यालय भी उन्हीं के समान एक अलग संस्था हैं। इस प्रकार उसकी भूल यही है कि उसने विश्वविद्यालय को भी उसी कोटि का समझा, जिस कोटि में उसके अन्तर्गत आने वाले कालेज, संग्रहालय, पुस्तकालय आदि है, उसने 'विश्वविद्यालय' को ऐसे कोटि में रख दिया जिसमें वह नहीं आता। इस विदेशी दर्शनार्थी की इसी भूल को 'कोटि–दोष' कहा जा सकता है। इसके अलावा भी अनेक ऐसे ही उदाहरण देकर राइल ने अपने इस सिद्धान्त को स्पष्ट किया है।

फेनोमेनोलाजी पद्धति (Phenomenology Method)

दर्शन की परम्परा में 'फेनोमेना' शब्द का अपना एक साहचर्य अर्थ मिलता है। उसी कारण 'फेनोमेनोलाजी' शब्द के उच्चारण से ही मन में कुछ साहचर्य उत्पन्न हो जाता है। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि 'फेनोमेनोलाजी' 'फेनोमेनोलिज्म' नहीं है। 'फेनोमेनोलिज्म' संवृत्तिवाद है, उस अर्थ में फेनोमेनोलाजी को संवृत्तिशास्त्र नहीं कह सकते। संवृत्तिवादी परम्परा में संवृत्ति तथा तत्त्व अथवा दृश्यवस्तु एवं 'अपने में वस्तु' में भेद किया जाता है। कांट जैसे विचारकों ने इस प्रकार का भेद किया है। उनके अनुसार अपने में वस्तु 'कुछ' है, परन्तु जो ज्ञात होता है, जो दिखाई देता है, वह उससे भिन्न है। उसे ही इस प्रकार के विचारक संवृत्ति (Phenomenon) कहते हैं। अतः संवृत्तिवादी दृष्टि वह दृष्टि है जो संवृत्ति अर्थात् फेनोमेनन के द्वारा जगत् की तथा अनुभव की व्याख्या करता है। फेनोमेनालाजी इस प्रकार का संवृत्तिवाद (Phenomenalism)नहीं है। फेनोमेनोलाजी का 'फेनोमेना' किसी रूप किसी प्रकार के तत्त्व या अपने में वस्तु (Thing-in-itself) से सम्बन्धित नहीं हैं। इस प्रकार के व्यामिश्र के उत्पन्न होने का कारण 'फेनोमेना' शब्द का सरलार्थ है। ग्रीक शब्द Phainomenonका अर्थ प्रतीति भी है, तथा logos भी। Logos शब्द से भी अनेक अर्थ सूचित होते है। इसका अर्थ शब्द भी है, शब्दतत्त्व भी, तथा बौद्धिक अन्वेषण भी। अर्थात् 'फेनोमेना' से ऐसे बौद्धिक भाव अथवा सारतत्त्व सूचित होते है जो प्रतीति है। संवृत्तिवाद अब यह सोचकर अग्रसर होता है कि प्रतीति तो किसी की प्रतीति है। अतः उनके अनुसार 'फेनोमेना' तत्त्व का प्रतीति–रूप हैं। यह ठीक है कि कुछ संवृत्तिवादी विचारक ऐसे किसी तत्त्व का निरसन कर देते है, उसे नहीं स्वीकारते, परन्तु उन्हें अस्वीकारने का आधार मात्र यही है कि ऐसे किसी तत्त्व या अपने में वस्तु को जानने या स्वीकारने का आधार उनके पास नहीं है। इतना तो है ही कि वे ऐसे किसी तत्त्व के विचार से अपने को मुक्त नहीं कर पाते, उसे अस्वीकारने के प्रयत्न में भी इस धारणा से ग्रसित रहते ही हैं कि 'फेनोमेना' किसी की प्रतीति हैं, उसे जाने या न जाने।

फेनोमेनोलोजी भी प्रतीति का बौद्धिक अन्वेषण है, किन्तु यहाँ 'प्रतीति' शब्द के दूसरे अर्थ को केन्द्र बनाया गया है अर्थात् जो प्रतीत होता है, वह प्रतीति है, अर्थात् जो अनुभव में आद्यरूप में ग्राह्य होता है वह प्रतीति है। इसके आद्यरूप में मात्र प्रदत्तता (Givenness) हैं। वह प्रतीति कैसे हुई, वह किसकी प्रतीति है। जो अनुभव में साक्षात् ढंग से आद्यरूप में प्रदत्त होता है, वह इन सभी वैचारिक स्तरों से पहले की अवस्था है। फेनोमेनोलाजी का 'फेनामेना' वह आद्यरूप में प्रदत्त भाव है, तथा फेनोमेनोलाजी उसी 'फेनामेना' का बौद्धिक अन्वेषण करना है, इसी कारण यह फेनोमेनोलाजी है। इस आद्यरूप में प्रदत्त भाव का अन्वेषण किस प्रकार होगा ? क्या इस प्रकार से प्रदत्त भाव का अन्वेषण वस्तुनिष्ठ ढंग से हो सकता है ? क्या इसका अध्ययन मनोवैज्ञानिक ढंगों पर करना है ? यह भाव तो चेतना को प्रदत्त होता है, तो यह चेतना में संरचित कैसे होता है ? फेनोमेनोलाजी इन सभी सम्भव संशयों का निराकरण कर लेता है। उसका कहना है कि यह अन्वेषण मनोवैज्ञनिक ढंग से नहीं हो सकता। वह यह स्पष्ट करता है कि ये भाव चेतना में संरचित नहीं होते, चेतना में प्रकट होते है, चेतना उन्हें पकड़ती है। इस प्रकार फेनोमेनोलाजी का कहना है कि इस आद्य–भाव के अन्वेषण के लिये **चेतना** (Consciousness) पर ही ध्यान केन्द्रित करना है, क्योंकि चेतना में ही ये भाव स्पष्ट होंगे। इस प्रकार फेनोमेनोलाजी कि अध्ययन की विषयवस्तु चेतना(Consciousness)है–चेतना के विश्लेषण के द्वारा इन आद्यप्रदत्त भावों को पकड़ने की चेष्टा फेनोमेनोलाजी हैं। इसी कारण इसका दावा है कि इस प्रकार पहली बार, इस रूप में चेतना दार्शनिक अध्ययन का केन्द्र बनी। इसका यह अर्थ नहीं है कि फेनोमेनोलाजी के अनुसार चेतना का अध्ययन सर्वथा उपेक्षित रहा है। ऐसा फेनोमेनोलाजी नहीं कहता। वह स्वीकारता है कि दर्शन की परम्परा 'चेतना' के अध्ययन को महत्त्व तो देती रही है, परन्तु उनका अध्ययन कुछ दोषग्रस्त भावों पर आधारित रहा है। पहले तो किसी न किसी रूप में चेतना को एक तत्त्व या द्रव्य के रूप में कल्पित किया जाता रहा। भौतिक तथा मानसिक तत्त्वों के द्वैत से दर्शन की परम्परा अपने को मुक्त नहीं कर पायी। इसके फलस्वरूप चेतना का प्रत्येक प्रकार का अध्ययन–विश्लेषण इसे भौतिक जगत् की पृष्ठभूमि में बिठाकर होता रहा। हाल ही में अतिवैज्ञानिकता के प्रभाव में चेतना की वैज्ञानिक एवं व्यवहारवादी व्याख्या प्रस्तुत की गयी, जिसमें 'चेतना' को प्रायः लुप्त ही कर दिया गया क्योंकि वहाँ मात्र यही प्रयत्न होता रहा कि कैसे चेतना–सम्बन्धी कथनों को व्यवहार–सम्बन्धी कथनों में रूपान्तरित कर दिया जाय। कुछ मनोवैज्ञानिक तो चेतना की परिमाणमूलक व्याख्या भी प्रस्तुत करने लगे।

फेनोमेनालाजी इस प्रकार से चेतना के अध्ययन का समर्थक नहीं है, अपितु उसका तो कहना है कि इसी प्रकार के अध्ययन के कारण दोनों प्रकार की व्याख्यायें चेतना–सम्बन्धी कुछ तथ्यों की व्याख्या में पूर्णतया असमर्थ है। फेनोमेनोलोजी के अनुसार 'चेतना' का जो अध्ययन

हुआ है, वास्तविक अर्थ में चेतना का अध्ययन ही नहीं हैं। दर्शन की परम्परा तो 'चेतना' की विशिष्टता को पकड़ ही नहीं पायी, उसे भौतिक वस्तु के आलोक में समझने की चेष्टा करती रही और अतिवैज्ञानिकता के प्रभाव में विकसित दृष्टि भी चेतना को 'परिमाणमूलक बनाने की चेष्टा करती रही। फेनोमेनालाजी के अध्ययन का मुख्य विषय 'चेतना' है, उसका लक्ष्य है–चेतना के आद्यरूप में प्रदत्त भावों को पकड़ना'। वह इस प्रकार आत्मनिष्ठ चेतना के विश्लेषण के द्वारा वस्तुनिष्ठ, आद्यरूप में प्रदत्त भावों को पकड़ने की चेष्टा करता है। वह ऐसा इस कारण कर पाता है क्योंकि उसने चेतना के विशिष्ट स्वरूप पर ही अपने विचार को स्थित किया हैं। 'चेतना' कोई तत्त्व नहीं है, यह एक दिशा है। इसके दो पहलू हैं–प्रथम यह कुछ ग्रहण करता है तथा दूसरे यह विषयोन्मुख है। इसके अनुसार चेतना को अनिवार्यतः किसी विषय की अपेक्षा होती है। चेतना की विषयोन्मुखता में ही उस विषय को पकड़ा जा सकता है। 'विषय' को पकड़ने के लिये चेतना से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं हैं, यदि चेतना के आद्यरूप का विश्लेषण हो तो, उसी चेतना में उसका विषय स्पष्ट हो जायेगा। वह विषय पूर्णतया वस्तुनिष्ठ होगा, क्योंकि किसी प्रकार की विकृति अभी उस पर अपना रंग नहीं चढा पायी है, वह विषय का वह रूप होगा जो आद्य अनुभूति में प्रदत्त्त हुआ है, तथा अपनी विषयनिष्ठता को तनिक भी खो नहीं पाया है। इस प्रकार से चेतना के विश्लेषण से वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति हो सकती है और फेनोमेनोलाजी इसी हेतु अपनी फेनोमेनोलाजी की पद्धति का आविष्कार करता है। हुसर्रल ने भी अपनी फेनोमेनोलाजी में यही किया है अर्थात् इस प्रकार की 'फेनोमेनोलाजकीय दृष्टि' को स्पष्ट कर एक निश्चित रूप देने वाला हुसर्रल ही है। हुसर्रल पर ब्रेन्टानों के विषयापेक्षी सिद्धान्त का बहुत प्रभाव पड़ा और इस प्रभाव से हुसर्रल कभी मुक्त नहीं हुए। इस सिद्धान्त के अनुसार चेतना एक दिशा है जो सर्वथा विषयोन्मुख है अर्थात् चेतना को विषय की अपेक्षा होती ही है। चेतना कभी रिक्त नहीं होती। चेतना को जानने का अर्थ है, इसकी विषयापेक्षा को जानना और इसकी विषयोन्मुखता को जानना। इसी सिद्धान्त के प्रभाव में हुसर्रल को एक आधार मिल जाता है अर्थात् चेतना के विश्लेषण में प्रदत्त विषय को ढूंढना। इसी सिद्धान्त के आलोक में वे चेतना के आत्मनिष्ट रूप तथा उसकी विषयनिष्ठता का विरोध समाप्त कर पाते है, क्योंकि उन्हें अब यह स्पष्ट हो जाता है कि चेतना का कार्य विषय को अर्जित करना नहीं है–जैसा कि कान्ट ने सोचा था। विषय तथा चेतना के द्वैत के कारण ही यह प्रश्न उठ जाता है कि चेतना को विषय किस प्रकार प्रदत्त होते हैं अथवा किस प्रकार चेतना के द्वारा विषय संरचित होते हैं। यदि चेतना एक गति है और इसे आवश्यक रूप से विषय की अपेक्षा रहती है, तो चेतना अपने में ही, अपने विषय को व्यक्त कर सकती है, स्पष्ट कर सकती हैं। इस प्रकार हुसर्रल के लिये यह सिद्धान्त बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ और इस पद्धति का प्रयोग करके ही उन्होंने अपने चेतना सम्बन्धी सिद्धान्त प्रस्तुत किये।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि इस समकालीन पाश्चात्य दर्शन की प्रवृत्ति एवं चिन्तन के कारण ही समकालीन मानव प्राचीन रूढ़ीगत विश्वासों एवं अन्धविश्वासों से अपने को मुक्त करने में हिम्मत के साथ सक्षम हो पाया है। इस प्रवृत्ति के कारण ही आज का मानव प्रत्येक विचार को अनुभव, तर्क एवं वैज्ञानिक कसौटी पर कसकर ही विश्वास करता है। इस दार्शनिक प्रवृत्ति के कारण ही आज का समकालीन मानव दूसरे मानव के अस्तित्त्व का सम्मान करने लगा है कि वह भी एक मानव है, एक वस्तु अथवा साधन नहीं है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य यह भी बताना है कि कोई भी वस्तु या विचार यदि मानव के जीवन में उपयोगी है तो वह ही सत्य है अन्यथा असत्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *पैट्रिक, दर्शनशास्त्र का परिचय, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, 1990.*
2. *फ्रैंक थिली, पाश्चात्य दर्शन का इतिहास, (अनु0 एन0 ए0 खान शाहिद), अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लिमिटेड, नई दिल्ली, वर्ष–2014*
3. *प्रो0 बी0 के0 लाल, समकालीन पाश्चात्य दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1991.*
4. *अजित कुमार सिन्हा, समकालीन दर्शन, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, 1991.*
5. *डॉ0 डी0 आर0 जाटव, प्रमुख पाश्चात्य दर्शन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010.*
6. *जगदीश सहाय श्रीवास्तव, पाश्चात्य दर्शन की दार्शनिक प्रवृत्तियाँ, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000.*
7. *Y. Masih, A Critical History of Western Philosophy, Motilal Banarsidass Pvt. Ltd. New Delhi, 2016.*
8. *डॉ0 दिवानचन्द, पश्चिमी दर्शन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2005.*
9. *चन्द्रधर शर्मा, पाश्चात्य दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2009.*
10. *प्रो0 नित्यानन्द मिश्र, समकालीन पाश्चात्य दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2014.*
11. *Eugene Thomas Long, Twentieth Century Western Philosophy of Religion, Springer Netherlands, 2000*
12. *डॉ0 पिताम्बर दास, दर्शनशास्त्र की शोध प्रविधियाँ, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, उ0 प्र0, 2017.*